दीक्षा
7 फरवरी, 2005

बदलती दुनिया में हिन्दुस्तान

जयंत विष्णु नार्लीकर *

इसमें कोई शक नहीं कि आज हम शीघ्र-परिवर्तनशील माहौल में रह रहे हैं। इस परिवर्तन की अनेक छटाएँ हैं। राजकीय स्थिति, आर्थिक स्थिति, यातायात के साधन, औद्योगिक विकास, जनसामान्य के रोटी-कपड़ा-मकान की दशा... सभी बातों में तेज़ी से परिवर्तन हो रहें हैं और यह परिवर्तन विश्वव्यापी हैं-किसी एक देश या महाद्वीप तक सीमित नहीं हैं। ऐसे माहौल से गुज़रते समय हमारे देश का क्या हाल रहेगा ? विकास और उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ते समय उसे क्या सावधानियाँ बरतनी पड़ेंगी ? इस अभियान में हम हिंदुस्तानियों को कौनसी ज़िम्मेदारियाँ निभानी पड़ेंगी ?

'बदलती दुनिया में हिंदुस्तान' जैसे शीर्षक को अपने भाषण के लिये चुनकर आज मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि इन सब प्रश्नों कि चर्चा मात्र एक घंटे में करना न तो मेरे लिये संभव है, न तो मेरी वैचारिक और जानकारी की क्षमता है कि सभी पहलुओं को न्याय दे सकूँ । इसलिये मैं विज्ञान के दृष्टिकोणों से इस विषय पर अपने विचार आपके सामने पेश करूँगा। इसकी एक वजह और भी है। जैसा कि आप देखेंगे आज के परिवर्तन के पीछे प्रेरक शक्ति विज्ञान की ही है।

मैं शुरूआत करता हूँ ऐसे स्थित्यंतर पर एक लेखक के विचारों से। मूल फ्रांसीसी भाषा में व्यक्त इन विचारों का भावानुवाद इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है :-

''दीर्घकाल के पश्चात् आज हमें संसार में बड़े पैमाने पर द्वेष, पापाचरण, असत्य आदि दुर्गुणों का बोलबाला दिखाई दे रहा है। लगता है भक्ति-भाव आदि नष्टप्राय हैं। सच्चाई और सादगी तो मज़ाक के विषय बन गए हैं। न्याय भी नाममात्र बचा है। सभी जगह घोटाले चल रहे हैं, समाज मानो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है। योजना के अनुसार तो कुछ भी नहीं रहा'' .... यह वक्त किसने दिया, कब दिया, कहाँ दिया ?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए आपको चार सदियों पीछे चलना होगा। यद्यपि आप कहेंगे कि यह वर्णन वर्तमान पर अच्छी तरह लागू होता है, तथापि यह बात कही थी लुई ले रॉय नामक फ्रांसीसी लेखक ने 1575 में अपनी पुस्तक Vicissitude (याने स्थित्यंतर) में जो तत्कालीन यूरोप में काफी प्रचलित एवं चर्चित रही। तत्कालीन सामाजिक माहौल का उपर्युक्त वर्णन उस समय भी उचित माना जाता था। इसके कारण विचारणीय हैं। संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है-

सोलहवीं सदी में चुंबकरूपी दिशा-दर्शक की खोज हो चुकी थी और उसका प्रचार बढ़ रहा था। नौकायन की तकनीकी सुधर रही थी जिसकी बदौलत समुद्री यात्राओं का विस्तार हो रहा था। नई विचारधाराएँ आ रही थीं जिनका परंपरागत विचारधाराओं से संघर्ष हो रहा था। लम्बे प्रवासों ने रोगों के प्रसार में भी हाथ बँटाया था। गोला-बारूद की खोजों ने युद्धों को अधिक विनाशकारी बनाया था। मुद्रण तकनीक ने नए विचारों को फैलाने में मदद की थी और इस वजह से भी स्थापित विचारों के प्रति असुरक्षा का वातावरण बना था।

जिसे आज Renaissance याने नवजागरण का युग कहा जाता है, उस युग की वह शुरूआत थी। साहित्य-संगीत-कला-वास्तु के साथ-साथ अब विज्ञान भी एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में समाज के सामने आ रहा था और इस नए प्रभाव का आकलन न होने की वजह से ले रॉय सदृश विचारक अपने को (और अपने समाज को) असुरक्षित महसूस कर रहे थे। आज के सिंहावलोकन में हम नवनिर्मित काल को यूरोप का एक सुवर्ण युग मानते हैं और ले रॉय वर्णित स्थित्यंतर को प्रसूतिवेदना कहा जा सकता है।

आज मानव-समाज 'विज्ञान-युग' के माहौल में कुछ ऐसी ही असुरक्षा महसूस कर रहा है और इसकी चर्चा आज के विचारकों ने जारी रखी है। इसके दो उदाहरण हैं- 1964 में कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी में आयोजित एक वाद-विवाद का, जहाँ मैं श्रोता के रूप में उपस्थित था। वाद-विवाद का विषय था 'क्या विज्ञान-गल्प भविष्यदर्शी होते हैं या समाज को झकझोरने वाले असंस्कृत माध्यम ?' वैज्ञानिक फ्रेड हॉएल एवं विज्ञान-गल्प लेखक रे ब्रॅड्बरी इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में अपने विचार व्यक्त कर रहे थे।

यहाँ रे ब्रॅड्बरी ने एक मौके की बात कही- वे बोले, मेरा जन्म 1902 का है, तब से लेकर आज तक मैने अपने जीवन में विज्ञान के जो नए-नए अनुसंधान होते देखे हैं उनसे मुझे यही लगता है कि जो बातें मेरे जन्म के समय विज्ञान-गल्प में गिनी जाती थीं वे अब वास्तविकता का अंग बन गई हैं, याने आज का अच्छा विज्ञान-गल्प कल का वास्तव बन जाता है और यह स्थित्यंर इतनी शीघ्रता से हो सकता है कि उसकी परिणित मानव को अपने जीवन-काल में ही मिल जाती है।

इस स्थित्यंतर का उदाहरण अब मेरे दूसरे उदाहरण में देखें।The future shock (भविष्य का धक्का) नामक पुस्तक में लेखक आल्विन टॉफ्लर ने वैज्ञानिक अनुसंधानों के निरंतर बढ़ते वेग

* [illegible]

की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। विज्ञान तथा तकनीकी की शुरूआत धीरे-धीरे हुई, लेकिन चक्रवृद्धि ब्याज की तरह यहाँ अब अधिकाधिक तीव्रता से नई-नई बातों की, आविष्कारों की, नए अनुसंधानों की वृद्धि हो रही है। यदि हम आदिमानव काल से आज तक के लगभग 50,000 वर्षों के काल खण्ड को कोई 800 मानव जीवनियों में बाँटें (याने एक मानव जीवनी 62.5 वर्ष की हुई) तो इसमें से पहली 650 जीवनियाँ तो मानव ने गुफाओं में बिताईं। लेखन-कला जैसी संस्कृति के लिए आवश्यक कला का प्रयोग वह केवल पिछली 70 जीवनियों में करता आ रहा है और मुद्रण-कला तो पिछली 6-7 जीवनियों से ही। जिस बिजली पर हमारा आधुनिक जीवन इतना निर्भर है उसका प्रयोग तो पिछली दो जीवनियों का ही है और अंतरिक्ष तकनीकी, सूचना एवं कम्प्यूटर की तकनीक तो पिछली एक जीवनी से भी कम समय से रही है।

इस बढ़ते वेग का प्रभाव जीवन स्तर पर, जीवन पद्धति पर, सामाजिक माहौल पर पड़े बिना नहीं रहता। यदि हम किसी बुफे डिनर पर जाएँ जहाँ नई-नई चीजें, पकवान परोसे जाएँ तो कौन-सी वस्तु लें कौन छोड़ें इसका संभ्रम पैदा होता है। समाज की अवस्था कुछ ऐसी ही है। वह विज्ञान द्वारा परोसे गए नए-नए तकनीकी खाद्यों के कारण चकरा सा गया है। इसी स्थित्यंतर की चर्चा हम इस लेख में कुछ विस्तार से करेंगे। आइए, पहले देखें ऐसे कौन से पकवान भविष्य में परोसे जाएँगे।

तकनीक की नई दिशाएँ

बीसवीं सदी के आरंभिक काल में क्या कोई यह कल्पना कर सकता था कि इस शतक में अणु बम जैसे संहारक अस्त्र बनेंगे, मानव चाँद पर कदम रखेगा, कम्प्यूटर जीवन के अनिवार्य अंग बन जाएँगे या टेलीविजन, मोबाइल फोन आदि सूचना एवं प्रसारण के प्रभावी साधन के रूप में आएँगे ? तेजी से बढ़ते विज्ञान के प्रभाव का अनुमान, अपेक्षाएँ या आकांक्षाएँ वास्तव से कहीं नीचे ही रहेंगी। फिर भी भविष्य-बोध समाज को भविष्य के प्रति चौकन्ना बनाने का एक महत्वपूर्ण प्रयत्न है।

- आज के माहौल में सबसे प्रभावशाली हुआ है कम्प्यूटर। मूर का नियम कि कम्प्यूटर की गणन-क्षमता हर डेढ़ साल में दो गुनी होती है, अब तक सही साबित हुई है। 1950 के मुकाबले में आज के कम्प्यूटर दस अरब गुने शक्तिशाली हैं। साथ ही घन पदार्थों के विज्ञान ने इनको छोटा-छोटा करके विशाल हॉल के आकार से अब हथेली पर रख दिया। उनके मूल्य भी घटते जा रहे हैं। यह कोई अचरज की बात नहीं होगी कि 20-25 वर्षों में मेज पर रखे कम्प्यूटर की क्षमता आज भारत भर के तमाम कम्प्यूटरों के समुदाय से कहीं अधिक हो या जिस 'क्रे' सुपर कम्प्यूटर के इस्तेमाल पर अमेरिका पाबंदियाँ लगा रहा था, वैसे कम्प्यूटर बच्चों के खेलों में दिखाई दें।
- मोबाइल तकनीक कम्प्यूटर के साथ जुड़कर सूचना एवं जानकारी के आदान-प्रदान में नए रूप धारण करेगी। कमीज के पाकिट में रखा 'टॅब' एक फोन के रूप में धारक को पूरे विश्व के सम्पर्क में रख सकेगा। इस पर ग्रंथालय में समाहित जानकारी मिल सकेगी। इससे बड़ा 'बोर्ड' दीवाल पर लटकाया जा सकता है और टेलीविजन, टेली कॉन्फ्रेसिंग आदि के लिए काम में लाया जा सकेगा। टॅब एवं बोर्ड के बीच 'पैड' (कागज जैसा पतला लेकिन अथाह जानकारी से भरा) में कम्प्यूटर के गुण होंगे।
- बीसवीं सदी को इलेक्ट्रॉनिक्स ने जैसा प्रभावित किया वैसे ही इक्कीसवीं सदी में फोटॉनिक्स का राज चलेगा। हर सेकण्ड में 50 गिगाबिट जानकारी प्रसारित करने के लिए फोटॉन याने प्रकाशकण ही इलेक्ट्रॉन के मुकाबले अधिक योग्य साबित होंगे। इनकी शक्ति बढ़ाने के लिए ऑप्टिकल एम्प्लिफायर (प्रकाश वर्द्धक) बनाने के प्रयास चल रहे हैं। एक वेव्हलेंथ के प्रकाश पर लेसर की प्रति सेकण्ड सहस्र अब्ज स्पंदनों को ले जाने की क्षमता हासिल होने पर इंटरनेट सदृश जानकारी-प्रसारक माध्यम आज की तुलना में बहुत ही कार्यक्षम बनेंगे। याने 'इन्फॉर्मेशन हाइवे' के रूप में क्रांति होगी।
- जानकारी के क्षेत्र में सेलुलर फोन, उपग्रह यंत्र आदि आज के मुकाबले अधिक व्यापक बनेंगे। उच्च फ्रीक्वेंसी पर अधिक जानकारी भेजी जा सकती है, यदि भेजने की कठिन तकनीक हासिल हो तो। उस दिशा में काफी उन्नति हो चुकी है और 30 गिगाहर्ट्ज तक इस तकनीक के पहुँचने की आशा है। डिश एण्टीना की जगह अधिक कार्यक्षम फेज्ड अरे एण्टीना दिखाई देंगे।
- यातायात के साधनों में चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा उठाई गई हवा में चलने वाली रेलगाड़ियाँ 500 किलोमीटर प्रति घंटा चाल हासिल कर लेंगी। ऐसी गाड़ी हमें मुम्बई से दिल्ली महज तीन घंटों के भीतर पहुँचा देगी। यह भी संभव है कि यह चाल बढ़कर प्रति घंटा 2000 किमी तक पहुँच जाए। ऐसी हालत में इन गाड़ियों को बिना किसी धक्के से चलाने के लिए समुद्र के भीतर खास सुरंगें बनानी होंगी। लंदन से न्यूयार्क तक की यात्रा ऐसी गाड़ियाँ तीन घंटे में पूरी कर पाएँगी। उधर हवाई जहाज भी 800-1000 यात्रियों को ध्वनि के तिगुने वेग से ले जा पाएँगे और मोटर गाड़ियाँ अधिक 'यूजर फ्रेंडली' बनेंगी जो कम्प्यूटराइज्ड डॅश बोर्ड पर बताए हुए सही रास्ते से स्वचालित एवं सुरक्षित ढँग से गंतव्य तक पहुँचा देंगी।
- लेकिन ऐसे यात्रा के साधन अधिकाधिक 'टूरिज़्म' के लिए काम में आएँगे। अपने प्रतिदिन के कारोबार में घर से ऑफिस जाने की दौड़-धूप धीरे-धीरे अनावश्यक बनती जाएँगी, क्योंकि हर व्यक्ति घर से ही काम करेगा। फाइलें दफ्तर में न रह कर

घर के कम्प्यूटर में रहेंगी। बच्चे भी स्कूल की पढ़ाई विशाल टी.वी. के पर्दे पर घर से ही कर सकेंगे। यह कोई अचरज की बात नहीं होगी यदि ऐसी स्थिति सन् 2020 तक ही आ जाए।

- हमें चोट लगती है तो थोड़े उपचार के बाद हमारा शरीर पुनर्निर्माण के द्वारा शारीरिक चोटों को ठीक कर देता है। हड्डियाँ टूटने पर भी फिर जुड़ जाती हैं या सिर फटने पर भी पूर्ववत् हो जाता है। क्या यह प्रवृत्ति यंत्र निर्मित निर्जीव वस्तुओं में लाई जा सकती है ? प्राकृतिक प्रवृत्तियों की ऐसी नकल, संभव है कुछ ही वर्षों में वास्तविक बन सके, क्योंकि इस दिशा में अनुसंधान चल रहे हैं।
- उसी तरह 'बुद्धिमान' वस्तुओं के निर्माण भी दूर नहीं, आप सीढ़ी पर चढ़ रहे हैं, यदि काफी बोझ लेकर चढ़ रहे हों तो सीढ़ी आपको बता देगी, मत चढ़िए-यह बोझ मुझसे सहा नहीं जाएगा- मैं टूट जाऊँगी। भूचाल के समय इमारतें स्वयं ही अपनी शक्ति बढ़ाकर भूचाल निर्मित धक्कों एवं तनावों को सह लेंगी। उसी तरह कुछ वस्तुएँ 'अब हमारी आयु बढ़ चली- हमें अब रिटायर कर दें' यह सूचना अपने मालिक को स्वयं देंगी। इस तरह पुराने कमजोर पुल गिरने के पहले उनका इस्तेमाल बंद हो जाएगा।
- जैसे-जैसे मानव जीवन का यंत्रावलंबन बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे उस स्तर को बनाए रखने के लिए अधिकाधिक ऊर्जा की आवश्यकता महसूस होगी। सन् 1850 तक मानव की ऊर्जा खर्चने की क्षमता प्रति शतक 16.5 अरब टन कोयला जलाने के बराबर थी। सन् 1850 से आगे यह व्यय दोगुनी चाल से होने लगा क्योंकि अब औद्योगिक क्रांति पनपने लगी थी। दूसरे महायुद्ध के उपरांत इसमें और दस गुना उछाल आया। याने पिछले 2000 वर्षों में मानव ने जितनी ऊर्जा खर्ची उसका आधा भाग बीसवीं सदी में ही खर्चा और अब इक्कीसवीं सदी में यह व्यय और भी बढ़ेगा। तो यह ऊर्जा आएगी कहाँ से ? सूरज से मिलने वाली ऊर्जा बड़े पैमाने पर अंतरिक्ष में विशाल अंतर्वक्र शीशों द्वारा केन्द्रित कर भूतल तक पहुँचाने की योजना अभी कागज़ पर हैं। न्यूक्लीय फ्यूज़न पर प्रयोग चल रहे हैं पर अभी क्रिया संतुलित ढंग से कार्यान्वित नहीं हो पाई है। पर हमें यह आशा करनी चाहिए कि ये दोनों मार्ग निकट भविष्य में (अर्थात् दो-तीन दशकों में) उपलब्ध होंगे, अन्यथा ऊर्जा संकट का और कोई दूसरा हल संभव नहीं।
- यदि बीसवीं सदी पदार्थ विज्ञान की थी तो अब इक्कीसवीं सदी जीव विज्ञान की साबित होगी। इसके आसार अभी मिलने लगे हैं। मानव जीनॉम परियोजना अब पूरी हो गई है जिसके आधार पर मानव शरीर के सभी लगभग एक लाख जीन का नक्शा बनाया जा सकता है। इससे कई आशा-आकांक्षाएँ की जाती हैं। जैसे 'कन्स्ट्रक्शन मैन्युअल' के मिलने पर मिस्त्री किसी यंत्र के बिगड़ने के कारण जान सकता है वैसे ही अब मानव शरीर की आंतरिक जानकारी रोगों के इलाज के लिए फलदायी होगी। एड्स, कैन्सर आदि असाध्य माने जाने वाले रोगों पर विजय पाने की आशाएँ बढ़ गई हैं। यह भी माना जाता है कि अगले दो-तीन दशकों के भीतर ऐसा समय आएगा कि कोई भी व्यक्ति दवाइयों की दुकान में कुछ टेस्ट करवा कर अपने शरीर की 'रचना पुस्तिका' एक सीडी रोम के ऊपर अंकित कर, ले जा सकेगा।

चिंता के कुछ विषय

किसी भी स्थित्यंतर के कारण, खासकर यदि वह तेज़ी से आए, समाज की आंतरिक व्यवस्था, उसका संतुलन बिगड़ सकता है। समाजधुरिणों के सामने कुछ यक्ष-प्रश्न आ जाते हैं। यदि हिम्मत और समझदारी से निर्णय न लिए जाएँ तो आगे पछताने का समय आ सकता है। अब देखते हैं कि अभी बताए नए अनुसंधानों को पचाने के लिए क्या समझदारियाँ बरतनी पड़ेंगी।

- ओज़ोन वायु की सतह हमारे वायुमण्डल में होने की वजह से हम सूरज की अति नील किरणों से बच पाते हैं, पर मानव निर्मित उपकरणों से निकलने वाले फ्लोरोक्लोरो कार्बनिक पदार्थ ने ऊपर जाकर ओज़ोन को खतरे में डाल दिया है। ऐसे उद्रेकों पर प्रतिबंध लगाना असंभव नहीं, पर स्वार्थवश अमेरिका जैसा धनी देश, जो ऐसे उद्रेकों के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार है, ऐसा आत्म-नियंत्रण नहीं बरतना चाहता। ओज़ोन का प्रश्न पर्यावरण के खतरों में से एक है। अन्य काफी खतरे हैं जो पर्यावरण के बिगड़ते संतुलन के लिए एवं उसके मानव के स्वास्थ्य पर होने वाले दुष्परिणामों के लिए जिम्मेदार हैं।
- मानव जीनॉम परियोजना के साथ-साथ अन्य कई संभावनाएँ सामने आई हैं, जैसे क्लोनिंग याने किसी जीवन की प्रतिकृति का निर्माण करना। 'डॉली' नामक भेड़ के उदाहरण ने वास्तविक रूप प्रदर्शित किया है। क्लोनिंग के फायदे हैं लेकिन इस प्रयोग के बुरे परिणाम भी हो सकते हैं। जिस तरह जीव-शास्त्र के इस्तेमाल से जैविक अस्त्रों की बुनियाद पड़ी वैसे ही क्लोनिंग से वंशवाद के दुष्परिणाम बढ़ जाएँगे। किसी एक जाति को निर्मूल कर देना (जर्मनी के तानाशाह ॲडॉल्फ हिटलर ने ऐसा प्रयत्न किया था) जैविक अनुसंधानों के माध्यम से संभव होगा।
- अधिकाधिक यंत्रावलंबन के कारण शारीरिक मेहनत कम हो रही है। क्या मानव प्रकृति से अधिकाधिक दूर जाते-जाते अपनी तंदुरुस्ती खो बैठेगा ? केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक स्वास्थ्य भी, क्योंकि कम समय में (यंत्रों के माध्यम से)

अपना काम पूरा करने के पश्चात् उसके सामने सवाल खड़ा होगा कि खाली समय का उपयोग कैसे करें ? संस्कृत श्लोक बताता है-

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

अभी से हम देखते हैं कि तथाकथित उन्नत देशों में व्यसनाधीनता बढ़ रही है, पारिवारिक जीवन नष्टप्राय हो गया है और छोटे झगड़ों का रूपांतर खून-खराबे में होता है।

- शायद सर्वाधिक खतरा, हम सभी को समाप्त करने की क्षमता रखने वाला, न्यूक्लीय अस्त्रों के ढेर में मौजूद है। इस समय ऐसे अस्त्रों की सामूहिक क्षमता संसार की समूचे जीव-सृष्टि को तहस-नहस करने में ज़रूरत से कई गुनी हो चुकी है और आगे की तकनीक इस क्षमता को बढ़ाती जाएगी। इसीलिए यह आवश्यक है कि संसार के सभी देश मिलकर इस ढेर को नाकाम करें और नए अस्त्रों के निर्माण पर सार्वजनिक पाबंदी लगाएँ।

समाज और विज्ञान का पारस्परिक सम्बन्ध

इस पार्श्वभूमि पर समाज अपने सामूहिक रूप में विज्ञान पर क्या प्रभाव डाल सकता है ? क्या वह ऐसे कदम उठा सकता है जो भविष्य में विज्ञान के रूप को, उसकी उन्नति की दिशा को निश्चित करें ? आइए कुछ उदाहरण देखें।

- जैसा हम अभी देख चुके हैं, जीव विज्ञान ऐसे मोड़ पर आ पहुँचा है कि उसके भविष्य की दिशा निश्चित करने की जिम्मेदारी समाज को उठानी पड़ेगी, क्योंकि प्राकृतिक क्रियाओं से दूर जाकर प्राणि तथा वनस्पति-जीवन से छेड़-छाड़ करना अब संभव है। क्लोनिंग पर क्या-क्या प्रतिबंध आवश्यक हैं ? क्या नए प्रकार के जीव बनाए जाएँ ? बायोटेक्नालॉजी सामान्य भौतिक या रासायनिक तकनीकों से कुछ भिन्न हैं। यह कुछ मामलों में अधिक प्रभावक्षम, कम खर्चीली तथा पर्यावरण से नरमाई से पेश आने वाली अवश्य है, लेकिन इसके बुरे परिणाम भी बहुत सारे हैं। खासकर कुछ प्रयोगों के जो प्राकृतिक जैविक क्रियाओं में परिवर्तन करते हैं, दूरगामी परिणाम क्या होंगे यह कोई नहीं बता सकता है। ऐसे अज्ञातों के प्रति समाज को सावधानी बरतनी होगी।
- यह तो सभी मानेंगे कि किसी भी नई खोज के लिए उसके जनक को पूरा श्रेय मिलना चाहिए, लेकिन विज्ञान की यह भी जिम्मेदारी रही है कि नई खोजें, खासकर ऐसी जिनका समाज के लिए कल्याणकारी प्रभाव साबित हो चुका है, जन-सामान्य तक पहुँचें। निजी स्वार्थ के लिए उन्हें कुछ इने-गिने लोगों तक समिति रखना उचित नहीं। ऐसे समय में समाज को न्यायपूर्ण निर्णय लेने होंगे। उदाहरण के लिए कुछ असाध्य माने जाने वाले रोगों पर इलाज करने वाली दवाइयाँ सभी को उपलब्ध होनी चाहिए। केवल कुछ लोगों या कम्पनियों को इन्हें बनाने का अधिकार हो तो यह देखना आवश्यक है कि वे इसका अनुचित लाभ न उठाएँ। विज्ञान के शोधकार्य को जारी रखना, उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता देना, जैसे समाज का कर्तव्य बनता है, वैसे ही समाज को यह भी जिम्मेदारी निभानी पड़ेगी कि यह शोध ऐसी दिशा में न बढ़े जिससे आगे समाज को पछताना पड़े। परमाणु बम की खोज एक ऐसा ही उदाहरण है।
- औद्योगिक क्रांति के पश्चात् मानवीय तकनीक में यह क्षमता आई कि वह पर्यावरण पर प्रभाव डाल सके। मोटरकार की खोज के बाद जैसे-जैसे उनका प्रयोग बढ़ता गया, नगरीय पर्यावरण दूषित होता गया। 1970 के आसपास लॉस एंजेलिस शहर का वातावरण इतना दूषित हुआ कि पेट्रोल के धुएँ पर नए प्रतिबंध लगाने पड़े। इस सदी के प्रारंभ में दिल्ली शहर को इसी अनुभव का सामना करना पड़ा। ऐसे प्रतिबंध अधिकतर लोगों को अच्छे नहीं लगते, लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से एवं सामाजिक दृष्टिकोण को सामने रखकर इनका पालन आवश्यक है।
- जैसे-जैसे सूचना-तकनीक पनपती जाती है उस बात की जिम्मेदारी समाज की ही है कि बढ़ती जानकारी का दुरुपयोग व्यक्ति स्वातंत्र्य को दबाने में न हो। फोन टेपिंग, गुप्त रूप से वीडियो रिकार्डिंग, गलत अफवाहें फैलाना ये सब ऐसे दुरुपयोगों के उदाहरण हो सकते हैं। कुछ साल पहले 'गणेश जी दूध पी रहे हैं' यह समाचार तेज़ी से संसार के कोने-कोने तक फैला। यहाँ चमत्कार गणेशजी के दूध पीने का नहीं था। इसके कारण की मीमांसा विज्ञान द्वारा की गई। चमत्कार यह था कि कितनी शीघ्रता से यह समाचार फैला। ऐसी अफवाहों पर काबू पाना, सच्चा समाचार प्रसारित करना, चमत्कारों को विज्ञान द्वारा हल करना समाज के ही कर्तव्य हैं।

भारत की अपनी जिम्मेदारियाँ

अब तक मैने वैश्विक स्तर पर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव की चर्चा की। अब देखते हैं एक विकासशील देश होने के नाते भारत को कौनसी सावधानियाँ बरतनी पड़ेंगी। आज आर्थिक विकास के मानदंड से भारत काफी ऊँचाई पर है। इन्फर्मेशन टेक्नालाजी, आउट्सोर्सिंग, बायोटेक्नालॉजी आदि क्षेत्रों में उसका योगदान दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। जैसे हमारे राष्ट्रपति महोदय ने विश्वास जताया है, यदि विकास की सीढ़ी ऐसी ही बढ़ती चाल से चले तो भारत सन् 2020 तक विकसित देशों की पंक्ति में विराजमान हो सकेगा।

इक्कीसवीं सदी में अब ऐसा माहौल धीरे-धीरे बनेगा, जिसमें राष्ट्रीय सीमाएँ धूसर होती जाएँगी और 'वसुधैव कुटुंबकम्' का

वातावरण निर्मित होगा। व्यापार, काम-धंधे, शिक्षा, खेल आदि में ऐसी सीमाएँ कम हो चुकी हैं। अभी राजनैतिक प्रश्न इसके आड़े आते रहते हैं, लेकिन आपसी झगड़ों में धन, समय मानव-संसाधन आदि का व्यय यदि घटे तो निश्चित रूप से पृथ्वी पर मानव जीवन-स्तर ऊपर उठेगा। इस उद्देश्य के लिए विज्ञान तथा तकनीक प्रभावी अस्त्र हैं बशर्ते समाज उनका बुद्धिमानी से इस्तेमाल करे।

यदि हम सामूहिक बुद्धिमानी से आगे बढ़ें तो कुछ ही दशकों में ऐसी स्थिति आ सकती है कि आज जैसे योरोप आर्थिक एकीकरण की ओर बढ़ रहा है वैसे ही भारतीय प्रायद्वीप में भी आर्थिक एकता का माहौल बनेगा। इसके लिये यह जरूरी है कि हम हिंदुस्तानी हमारे बढ़ते विज्ञान-तकनीक के सामर्थ्य का उपयोग यहाँ के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने के लिये करें। आपसी राजनैतिक मतभेदों को दबाकर एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देश को आगे बढ़ाने के प्रयास करें।

यह 'बुद्धिमानी' समाज में कैसे आएगी ? शिक्षा प्रसार इसका एक माध्यम है, लेकिन साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार भी उतना ही आवश्यक है। जहाँ विज्ञान एवं जानकारी बढ़ती जा रही है वहीं तथाकथित विज्ञान, तथाकथित चमत्कार के पीछे भी काफी लोग भागते नज़र आते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमें नीर-क्षीर भेद करना सिखाता है। यद्यपि यह दृष्टिकोण विज्ञान के विकास में सामने आया तो इसका प्रभाव सामान्य जीवन में भी है। संक्षेप में विज्ञान तथा तकनीकी के विकास ने समाज के सामने नई चुनौतियाँ रखी हैं। क्या तकनीकी के कारण बदलते माहौल में बिना उलझे मानव बढ़ सकेगा ? उसके लिए उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना पड़ेगा।

अब हम इस प्रश्न पर दूसरी दिशा से विचार करेंगे। विज्ञान समाज के लिए कहाँ तक लाभदायी सिद्ध होगा ? क्या इसे 'भूल जाना' समाज के लिए बेहतर होगा ? कुछ लोगों का कहना है कि इतने पेचीदा प्रश्न समाज के सम्मुख रखने वाला यह विज्ञान हमारे लिए सुखकर साबित नहीं हुआ। अतः इसे धीरे-धीरे 'बंद' करके औद्योगिक क्रांति के पूर्व के सादगीपूर्ण जीवन को अपनाना बेहतर होगा।

ऐसा दृष्टिकोण वास्तविकता से कोई नाता नहीं रखता। सर्वप्रथम यह विवाद का विषय है कि औद्योगिक क्रांति के पूर्व का जीवन आज के जीवन से अधिक सुखी था। उस समय अनेक रोग असाध्य माने जाते थे। मानव की औसत आयु बहुत ही कम थी क्योंकि प्रसव के समय मृत्यु (बच्चा और माता दोनों की) बड़े पैमाने पर हुआ करती थी और जो इससे बचते थे उन शिशुओं का लम्बे समय तक जीवित रहना-इन असाध्यप्राय रोगों के मुकाबले में असंभव माना जाता था।

जन-जीवन तथा शिक्षा का स्तर, आज के मुकाबले बहुत निम्न था। देहातों में आज बिजली पहुँच चुकी है। उस समय तो बिजली का नामोनिशान तक नहीं था। खेती के आज के उपकरणों, खाद के विभिन्न रूपों, मौसम की जानकारी के साधनों आदि के होने से आज की अवस्था भले ही सुखप्रद न हो तो भी दो सौ साल पहले के किसानों से कहीं बेहतर है।

एक समय था जब दक्षिण भारत के लोग वृद्धावस्था के निकट पहुँचकर काशी यात्रा के लिए घर से निकलते थे तो परिवारवालों से आखिरी विदा लेते थे, क्योंकि बिकट यात्रा से बचकर लौटने की संभावना कम थी। ठग, लुटेरे, जाड़ा और गर्मी की तीव्रता, सुगम रास्तों का अभाव, रोगों का फैलना, यातायात के साधनों की कमी आदि अनेक कारण थे जिनकी वजह से लम्बी यात्राएँ स्वर्गयात्रा में बदल जाती थीं।

नहीं ! यह मैं स्वीकार नहीं कर सकता कि विज्ञान के पदार्पण से जीवन का स्तर गिरता जा रहा है। आज घड़ी को उलटा घुमाकर उस धूसर-से सादगीपूर्ण जीवन की ओर लौटना संभव नहीं।

उलटे, विज्ञानरूपी साधन की महत्ता को पहचानकर उसे होशियारी से कार्यान्वित करने वाले समाज ही आगे बढ़ पाएँगे। 'होशियारी' का अर्थ यहाँ चर्चित जटिल समस्याओं को सुलझा कर आगे बढ़ना है। विज्ञान जनित तकनीक इस्तेमाल करते समय उसके शीघ्र तथा दूरगामी लाभों और दुष्परिणामों को समझना आवश्यक है। दूर-दृष्टि से अपनाए गए वैज्ञानिक अनुसंधान समाज के लिए लाभदायी सिद्ध होंगे।

हाँ, एक बात ! हम पूर्व परंपराओं से सीख सकते हैं। वह है यंत्र युग में मनुष्य की, मानवता की कद्र करना। मानव-मानव के व्यवहार में जो 'आदमीयत' पहले थी, उसे हम आज भूलते जा रहे हैं। इसीलिए 'परिवार' नामक संस्था को पुनर्जीवित करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज का घटक होता है। सामाजिक जीवन में कुछ मदों पर व्यक्तिगत स्वार्थ को सामाजिक हितों के आगे छोड़ देना आवश्यक होता है, क्योंकि ऐसा समय भी आता है जब व्यक्तिगत कठिनाई पर विजय पाने के लिए सामाजिक सहायता महत्वपूर्ण हो जाती है। जहाँ प्रत्येक सदस्य केवल अपने ही बारे में सोचता है, ऐसे समाज धीरे-धीरे विलीन होते जाते हैं।

बीसवीं सदी का आरंभिक स्थित्यंतर अब जोर पकड़ रहा है। जब हवा तेज बहती है तो उससे डरकर अपने आपको घर में बंद करना एक पर्याय है। उस तेज हवा की ऊर्जा इस्तेमाल कर अपनी समस्याएँ सुलझाना दूसरा पर्याय है। विज्ञान की तेज़ हवा को काबू में लाकर उससे अपना जीवन सुखी बनाना हमारा उद्देश्य होना चाहिए।

■■■